(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में संस्कृत गीत का वैशिष्ट्य

डॉ नीरज कुमारी

सह . आचार्य, संस्कृत विभाग, ठाकुर बीरी सिंह महाविद्यालय, टूंडला, फिरोजाबाद, भारत

THE SPECIALTY OF SANSKRIT SONG IN ANCIENT SANSKRIT LITERATURE

Dr. Neeraj Kumari
Associate Professor, Sanskrit Department
Thakur Biri Singh Degree College Tundla, Firozabad, India

"देवस्य पश्यकाव्यं, न ममार न जीर्यति।"

अथर्ववेद 10.8.32

*इस मन्त्रांश के अनुसार वेद **'देव का अमर काव्य हैं',** फलतः कालान्तर की कविनिर्मिति भी अजर–अमर है। वेद से लेकर अद्यावधि सतत् प्रवाहशीला काव्यमन्दाकिनी का सरसस्रोत कभी अवरुद्ध नहीं हुआ, अपितु वर्तमान संस्कृत गीत के रूप में तो वह और भी घनीभूत हो गया है। यह देववाणी भगवती सुरभारती का अप्रतिम वैशिष्ट्य है। वेद में प्रचुर मात्रा में मधुमय गीतों की मनोहारी छटा का दर्शन है, यथा–*

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचं,

उत त्वः श्रृण्वन् न श्रृणोत्येनाम्।

उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे

जायेव पत्ये उषती सुवासा ।।

ऋग्वेद 10.71.4

यह मन्त्र उपमा और विरोधाभास अलंकारों से विभूषित प्रसाद गुण युक्त मनोरम उदाहरण है। इस प्रकार गीत परम्परा वैदिक काल से चली आ रही है। गीत उतने ही प्राचीन हैं जितने वैदिक मंत्र। भारतीय वाङ्मय में वैदिक युग से आज तक गीतों का निर्विच्छिन्न विकास होता चला आ रहा है। साहित्य का समाजशास्त्र बताता है कि गेयता आदिम काल से ही प्रकृति की देन रही है। हर्षोल्लास

के क्षणों में आदिम मनुष्य गाता रहा है और पीड़ा के क्षणों में भी गाकर ही अपनी वेदना प्रकट करता आ रहा है। इसी प्रकार चलते–चलते वह एक कला का रूप बन गया।

*अर्वाचीन युग पर गीतों के विषय में दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि संस्कृत साहित्य की उन्नीसवीं शताब्दी **'पुनर्जागरण काल'** तथा बीसवीं शताब्दी **'समृद्धि काल'** नाम से जानी जाती है। इस काल में संस्कृत भाषा एवं वाङ्मय का प्रचार–प्रसार समूचे विश्व में हुआ है तथा संस्कृत भाषा में निबद्ध विषयों पर एक बार पुनः दृष्टि से विचार श्रृंखला आरम्भ हुई है। विभिन्न विषयों पर विश्वभर में संस्कृत को मूल में रखकर कार्य किये जा रहे हैं। संस्कृत की अवरुद्ध रचनाधर्मिता पुनः गतिशील हुई है। नवीन स्थापनाओं का आरम्भ हुआ है। इक्कीसवीं शताब्दी संस्कृत साहित्य का स्वर्णिम युग है। आज प्रत्येक क्षेत्र में संस्कृत साहित्य की उपयोगिता सिद्ध हो रही है। पाश्चात्य देश भी संस्कृत साहित्य के सिद्धान्तों का अनुकरण कर रहे हैं। इस प्रकार नवीन भिन्न–भिन्न रचनाधर्मिता होने से संस्कृत साहित्य भविष्य में एक ऐसी चेतना उत्पन्न करेगा जिससे आदिकाल में बोली जाने वाली ये संस्कृत भाषा पुनः अपने पुराने रूप को स्वर्णिम रूप में प्राप्त करेगी। एक ऐसा समय था जब मध्यकाल में संस्कृत भाषा में रचनाधर्मिता के प्रति उदासीनता आ गई थी किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में लोगों में ऐसी चेतना का स्फुरण हुआ कि उदासीनता के स्थान पर उत्साह का संचरण हुआ और नवीन आयाम स्थापित हुए। उस परम्परा को सभी साहित्यकारों ने आत्मसात् किया।*

*आचार्य परमानन्द शास्त्री विरचित **'स्वरभारती'** के गीतों में **'समसामयिकी समस्या'** नामक विषय पर कवि का चिन्तन प्रकट हुआ है। कवि मानवीय मूल्यों का ह्रास होते हुए देखकर, दूषित राजनीति से अत्यन्त क्षुब्ध है। उसे आशा है कि भारत का विगत गौरव पुनः प्राप्त होगा–*

निरुद्धं विनाशस्य वर्त्मातिवक्रम्,

प्रवृत्तं पुनः शीलसद्धर्मचक्रम्,

विवास्यच्छलं वैर–सन्देह–भीतीः

सुविश्वास आवासितो भारतेन,

कृतश्चारु पन्थाः पुनर्भारतेन।[4]

*प्रो. श्रीनिवास रथ द्वारा रचित काव्य **'तदेव गगनं सैव धरा'** में विसंगति और संत्रास उत्पन्न करने वाली वर्तमान स्थितियों के मध्य कवि हृदय की निराशा को इन गीतों में व्यंजित किया गया है। कवि कहता है कि जीवन की बेल पत्रहीन कर दी गयी है। हर स्थिति पर काँटे ही काँटे जड़ गये हैं सब कुछ कितना परिवर्तित हो गया है। समाज के लोग परस्पर ही ईर्ष्या–द्वेष से ग्रसित हैं। धनलोभी मनुष्यों ने विवाहिता वधू को भी अग्नि की ज्वाला में डाल दिया है। हमारे देश की संस्कृति, आचार–विचार सब धूमिल हो गये हैं जैसा कि प्रस्तुत गीत में दर्शनीय है–*

विपत्रितेयं जीवनलतिका

केवल–कुटिल–कण्टकाकुलिता

दूरे कुसुमकथा।

सूर्ये तपति मिस्त्रा प्रभवति

भवति नयनमयथा।।

निजनगरी–परिचितजन–लोचन–

वचन–विचार–चारूतोपहता।

पदे–पदे व्यवहार–कुशलता

प्रयोजनापेक्षया नियमिता।।

जननी–जनक–सखीजन–चिन्ता

सजल–नयन–सम्प्रेषित–दुहिता।

श्वसुर–सदन–लोभानल–दग्धा

जीवितेश–निलयं निवेशिता ।।

किमिति सपदि नववधू–विशसनं

दैनन्दिनी प्रथा।

विपत्रितेयं जीवनलतिका।

*आचार्य विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र **‘विनय’** कृत **‘सारस्वत समुन्मेषः’** काव्यसंग्रह में **समसामयिकी समस्याओं’** पर प्रकाश डालते हुए कवि कहते हैं कि विज्ञान के दूरगामी दुष्परिणामों से चिन्तित होकर वैज्ञानिकों से आह्वान करते हैं कि वे अपने संहारक उपलब्धियों के अन्वेषण व निर्माण की प्रवृत्ति को रोक दें और वास्तविकता के धरातल पर विचरण करें। वे आत्मावलोकन करें कि स्वयं को प्रगति की ओर ले जा रहे हैं अथवा नहीं। आज के इस भौतिकतावादी युग में मशीनीकरण का अधिकतम प्रयोग करके मानव ने स्वयं को खोखला बना लिया है। इन पंक्तियों में ऐसा चिंतन दर्शनीय है–*

पश्य मुकुरे क्षणं नु वदनं स्वं, कीदृशो रे! त्वमद्य संजातः।

तिष्ठ निमिषं तथापि भू पृष्ठे, यद्यपि त्वं वियच्चरो भ्रातः।।

यत्तु नीहारिकासु नगरं ते,प्रोज्ज्वलं कान्तिमय प्रतिभाति

हृन्त !प्रहराद्धि समुदिते भानौ, यत्तु निधनं गमिष्यति प्रातः।।

पश्य मुकुरे ।।

याकृतं भोस्त्वया न तद्वच्मि, किन्तु कथयामि विरम संहराद्,

यर्हि श्वासोऽपि साम्प्रतं रुद्धस्वद्भिया वाति नो सखे! वातः।

पश्य मुकुरे।।

*आचार्य भास्कराचार्य त्रिपाठी प्रणीत **'निर्झरिणी' (निलिम्प काव्य)** में **'संवेदनम्'** नामक गीत में गीतकार ने अपने अन्तःकरण की वह भावना अभिव्यक्त की है जिसमें सुखमय राष्ट्र का अभाव दृष्टिगोचर होता है, यथा–*

प्राची–प्रचीरे प्रकाशते यदा रक्तिमा प्रत्यूषे

काचन दिवमुपयाता पृच्छति

किं त्वं कुशली विराजसे'

किमुते प्रातः सुरभिपुलकितं

सन्ध्या ते संगीतमयी

अपि च कदाचित् पुनः शोच्यते

जननीयं वात्सल्यमयी

बारं–बारं मातृभाषया वदसि

वत्स हे कया समम्

का ननु पृच्छति निरामयं

ते परिसर्पितं–शंकया समम्

कच्चिद् विषवात्येव वर्द्धते न हिते पुत्रकमनोव्यथा

रात्रौ सर्पन्तीव सर्पिणी विषवैद्यानां दैन्य कथा

प्रत्येकं प्रातः सा तरसा पुलक–पवन–संवेदनया

स्नुतं धारं सारयति चेतनां गर्भरूप–परिकल्पनया।

(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722

अर्वाचीन संस्कृत गीतों की ओर दृष्टिपात किया जाए तो पता चलता है कि इस समय में संस्कृत साहित्य सर्जना में जो अभूतपूर्व वृद्धि हुई है वह इस क्षेत्र में हो रहे विभिन्न विधाओं पर गीत सर्जना के कारण हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर संस्कृत को जनमानस में अथवा लोक में जो प्रतिष्ठा मिली है वह उसकी पारम्परिक शास्त्रीय सर्जना के कारण नहीं, प्रत्युत नवयुगानुकूल गीत सर्जना के कारण मिली है। अतः तभी से अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में ***'नवगीत'*** *रूप अभिधान आरम्भ हुआ जिसका श्रेय 'आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री' (1916) को जाता है, जिन्होंने* ***'काकली'*** *जैसे श्रेष्ठ संस्कृत गीतसंग्रह की रचना करके सर्वप्रथम तो गीतों का नवीनीकरण प्रस्तुत किया और तदनन्तर संस्कृत साहित्य को सम्वर्द्धित किया। बीसवीं शताब्दी के कृतित्व से स्पष्ट होता है कि रचना धर्मिता का प्रवाह सतत् प्रवाहमान है। गीति नामक धारा अनेकानेक स्रोतों में प्रस्फुटित हो रही है। जिस प्रकार वर्षा आरम्भ में बूँदों के रूप में प्रकट होती है और बाद में घनघोर बरसती है। ठीक वैसे ही परिमाणात्मक रूप में बीसवीं शताब्दी में संस्कृत रचनाधर्मिता वर्षण के रूप में परिवर्तित हुई है। संस्कृत भाषा लेखन के संदर्भ में अन्य प्रमुख भाषाओं से अधिक सरल एवं सुस्पष्ट है जिसका एक प्रमुख कारण संस्कृत के एक निश्चित व्याकरण का होना है। यही कारण हे कि संस्कृत में भाषा की अभिव्यक्ति निरन्तर प्रखर तथा प्रगतिशील है।*

'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित ***'मृद्वीका'*** *रागकाव्य में समसामयिकी समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कवि ने मानव की मानसिक स्थिति का वर्णन किया है कि जब जीवन में सहसा ही सारी स्थितियाँ प्रतिकूल हो जाती हैं तो जीवन व्यतीत करना कितना दुर्लभ हो जाता है। सुख की चाँदनी के स्थान पर दुःख का सागर हिलोरे लेने लगता है। अपना घर भी अरण्य सा प्रतीत होता है। सुख तथा भाग्य कुछ भी बचा नहीं है, सबकुछ चला गया है। व्यक्ति अपनी पारिवारिक स्थिति पर विलाप कर रहा है। ऐसा मार्मिक वर्णन प्रस्तुत पद्य में अवलोकनीय है–*

सौख्यचन्द्रं समालक्ष्य मे मानसे

दुःखसिन्धुर्न जाने कथं जृम्भते

मूढ़लोकोऽविजानन् मुधाऽऽलोचते।।

साम्प्रतं भात्यरण्यं निजं मन्दिरम्

माधवाभं च नीलं नभोऽचन्दिरम्

को नु मुक्तिमार्थं भृशं नोदते?

सौख्यं गतं भाग्यं गतम्।

मन्येऽधुना सर्वं गतम्।।[5]

'वर्गभेद' *समाज का एक ऐसा निर्बल पक्ष है जिससे प्रत्येक व्यक्ति संतप्त है। यदि यह भेद समाप्त हो जाए तो समाज पूर्णरूपेण सुदृढ़ हो सकता है। निम्नवर्गीय व्यक्ति राजनैतिक तथा*

*सामाजिक रूप से प्रताड़ित है। व्यक्ति की संप्रेषणीयता मूक बन गई है। यथार्थवादी कवि विषमताओं से अपनी संगति नहीं बैठा पाता, तब वह कवि के रूप में स्वयं से प्रश्न पूछता है कि वह वास्तविकता को छोड़कर कल्पनालोक में क्यों डूबा हुआ है? आचार्य वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने अपनी कृति **'कलापिका'** में समसामयिक, सामाजिक व साहित्यिक संत्रासों को अभिव्यक्त किया है, यथा–*

क्व श्रुप्लावं श्रमवारिगलितं जीवितं दैन्यपिष्टं

सौख्यस्नातं क्व नुवा सुरभिणा जीवनं ते प्रकीर्णम्।

काव्यं बन्धो क्व च कर्णसुभगं स्वप्नसंलापसृष्टं

कुत्रार्तानां दलितान्तररूतं कण्ठभंगावदीर्णम्।।

*डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठी 'प्रणीत'**'निर्झरिणी'(निलिम्पकाव्य)** में अतीत का गौरव गान, वर्तमान के प्रति असंतोष, देशभक्ति, पराधीनता के विरूद्ध संघर्ष, क्रांति का आह्वान और सामाजिक सुधार के स्वर मुखरित हुए हैं। कवि की आशा है कि पुनः भारत देश का उत्थान होगा, लोगों में क्रान्ति की भावना उत्पन्न होगी जिससे देश में पुनः नवीन पुष्पों का उदय होगा अर्थात् देश में नवीनता व्याप्त होगी। असंतोष, विसंगति का नाश होगा, यथा–*

नवीन पुष्प कोमला निलिम्प भारती सखे,

निरन्तरं नवानुराग विभ्रमेण चुम्ब्यताम्।

अहे सुधामयी शुभा सुबद्ध शब्द सारणी

विराजते नवाङ्कुरा हरीतिमानुहारिणी।

जगद् विसर्जनेऽपि या सनातनी प्रकाशते

विकस्वराः श्रुतिः समादरेण सैव सेव्यताम्।।

नवीन पुष्प्प कोमला निलिम्प भारती सखे।।

*'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र प्रणीत **'मृद्वीका'** रागकाव्य में समाज की सबसे गम्भीर समस्या गरीबी और गरीबी के कारण धनवानों द्वारा शोषित लोगों का वर्णन किया गया है। छोटी मछली के उपमान द्वारा कवि ने दर्शाया है कि जब चारों ओर से गरीब जनता भुखमरी, मँहगाई से ग्रसित है तो ऐसा लगता है कि जल के बिना मछली तड़प रही हो और अन्त में ऐसी स्थिति आये कि वह अंतिम सांस ले रही हो। उसी प्रकार गरीब व्यक्ति भी ऐसी स्थिति में आ चुका है कि जीने के इच्छा ही समाप्त हो रही है, यथा–*

मरुसिकतायां छलयति हरिणं कुटिला

सलिलतृषा, म्रियते जिजीविषा।।

व्यवहारिक स्तर पर देखा जाए तो संस्कृत गीत हमारे दैनन्दिन कार्यों, धार्मिक कृत्यों तथा वातावरण से भी जुड़े हुए हैं। आज भी हमारी मातायें या अन्य महिलायें किसी विशेष अवसर पर मिल–जुलकर सोहर गीत , विवाह गीत, विदाई गीत, चैत्रक गीत, तथा दोला गीत इत्यादि गीतों को गाती हैं। आज यदि उन्हें पूर्णरूपेण संस्कृत भाषा में नहीं गाया जाता पुनरपि संस्कृत भाषा के शब्द उन गीतों में प्रयुक्त हैं। कोई भी धार्मिक या मांगलिक कार्य आरम्भ किया जाता है तो सर्वप्रथम गीत से ही किया जाता है, उसमें ईश्वर की स्तुति सर्वप्रमुख है।

अतः लोक में जो प्रचलित है, वही साहित्य की प्रगति का आधार है। आज जनमानस में गीत जैसी साहित्यिक विधा पूर्णरूपेण समाहित हो चुकी है। अर्वाचीन संस्कृत गीतकारों ने लोकभूमि से सम्पृक्त होकर लोकगीतों की रचना की है। परिणामतः उनकी कल्पनाऐं लोकजगत् की परिधि में रहकर विचरण करती हैं। स्त्री पुरुषों के विविध दैनन्दिन कार्यों, परिस्थितियों, मनोदशाओं का इन गीतों में सूक्ष्म निवेश हुआ है। गीतकारों ने लोकभाषाओं में प्रयुज्यमान स्वरालंकरण (हो, एहो, अरे, ना आदि) को संस्कृत भाषा में यथातथ्य स्वीकार कर गेयता की दृष्टि से स्वर–पूर्ति का ध्यान रखा है तथा संस्कृत लोकगीत को संस्कृतेतर लोकगीत के समान स्वरूप प्रदान का प्रयत्न किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि व्रजभाषा के गीत, यथा– ***"होरी खेलन आयौ श्याम आज जाय रंग में घोरौ री"*** *तथा* ***"आज विरज में होरी रे रसिया"*** *इत्यादि गीतों का संस्कृतानुवाद किया जाए तो ऐसी गीत रचनाएँ संस्कृत भाषा के लिए हित सवंर्धिका सिद्ध होंगीं।*

इस समय संस्कृत भाषा में सबसे अधिक सृजन हो रहा है। इस दृष्टिकोंण से जो अर्वाचीन संस्कृत साहित्य है उसमें विभिन्न विधाएँ हैं, यथा– रूपक, कहानियाँ, उपन्यास, एकांकी, काव्य, महाकाव्य इत्यादि हैं किन्तु अर्वाचीन संस्कृत गीत की छटा बड़ी मनोहारी है। उसमें न केवल शिल्पगत वैशिष्ट्य की अपनी विशिष्ट भंगिमा है अपितु तथ्य के धरातल पर भी गीतकारों ने नये नये आयाम आविष्कृत किये हैं। यह अर्वाचीन संस्कृत गीत निधि अध्येता को बरबस ही आकर्षित करती है। कहीं परम्पराओं का निर्वाह है और कहीं परम्पराओं से विद्रोह भी है जड़ताओं के तटबन्ध ध्वस्त होते प्रतीत होते हैं, यथा– संस्कृत काव्यधारा ऐतिहासिक और पौराणिक आख्यानों को लेकर विभिन्न विधाओं में, साहित्य रचने में समृद्ध होती रही लेकिन उसने अघुनातन जीवन के विविध पक्षों, विसंगतियों, बालगीतों का संस्पर्श प्रायः नहीं किया था, जिसकी परिपूर्ति अर्वाचीन संस्कृत गीत साहित्य में बहुत सुन्दर और समृद्ध रूप में हुई है।

साहित्य वस्तुतः समाज का दर्पण होता है। अपने युगीन सन्दर्भों को उसमें प्रतिबिम्बित नहीं किया गया और अनेकानेक समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए उनके सक्षम समाधान प्रस्तुत नहीं किये गये तो उस साहित्य का कोई महत्व नहीं होता है। अतः साहित्य से अपेक्षा की जाती है कि वह ***'रामादिवत् प्रवर्तितव्यम्'*** *का परामर्श दें और* ***'न रावणादिवत्'*** *की भाँति अशिव मार्ग पर जाने से रोके। इस दृष्टि से अर्वाचीन संस्कृत गीतों ने सार्थक भूमिका का निर्वाह किया है। ये गीत हमें आनन्दित*

(IJASSH) 2016, Vol. No. 2, Jul-Dec **e-ISSN: 2455-5150, p-ISSN: 2455-7722**

*भी करते हैं और सचेत भी करते हैं, यथा– अर्वाचीन संस्कृत गीत में भव्य–भावनाओं का हृदयावर्जक रूप–स्वरूप दर्शनीय है। एक उदाहरण आचार्य रमाकान्त शुक्ल प्रणीत **'भाति मे भारतम्'** गीत संग्रह से इस प्रकार उद्धृत है–*

प्रस्तरे शङ्करं मृत्तिकालोष्टके

विघ्नराजं गणेशं हृदा भावयत्।

जीवनं कष्टजुष्टं मुदा मापयद्

भूतले भाति मेऽनारतं भारतम्।।

(भाति मे भारतम्– 100)

*कितनी सुन्दर भावना गीतकार ने व्यक्त की है कि कष्टों से परिपूर्ण जीवन को मनुष्य आनन्दमय होकर व्यतीत कर लेता है। ऐसी आस्था रखने वाला एवं ईश्वर का आराधक मानव सदा विजयी होता है। अस्तु, अर्वाचीन संस्कृत गीत एक सुन्दर **'मणिदीप'** है जो समय के झंझावातों में अपना प्रकाश अविरल भाव से प्रसारित कर रहा है।*

संस्कृत साहित्य में बालोपयोगी साहित्य की बहुत न्यूवता है। इस दृष्टि से पंचतन्त्र जैसे ग्रन्थों को छोड़कर कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं मिलता जिसने बालचेष्टाओं को काव्य का विषय बनाया हो। इस दृष्टि से अर्वाचीन संस्कृत गीतकारों द्वारा बालोपयोगी रचनाओं का संवर्धन हुआ है।

*एक अन्य दृष्टि से भी अर्वाचीन संस्कृत गीत और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं कि **'पुराणमित्येवनसाधुसर्वम्'** के अनुरूप सब कुछ पुराना सदैव अंगीकार्य नहीं होता और नवीन होने से कोई काव्य या वस्तु त्याज्य नहीं हो जाती और फिर अर्वाचीन संस्कृत गीत तो समृद्धि के शिखर पर विराजमान हैं। उसने आने वाली पीढ़ियों को सुसमृद्ध पथ प्रदान किया है। एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रस्तुत अनुसंधेय कवि वृन्द ने तो अपना काव्य मार्ग स्वतः ही निर्माण किया फिर चाहें वह शिल्प के सन्दर्भ में हो व कथ्यगत अभिनव दिशायें हों। उसने एक नवीन पथ का निर्माण किया है और भगवती सुरभारती के साहित्य सदन में पर्याप्त अभिवृद्धि की है।*

अतः आशा की जा सकती है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भविष्य में अर्वाचीन युग के संस्कृत तपस्वियों के इतिहास का अभिलेख बनेगा और उनका परिचय इतिहास में प्रेरणादायी होगा। शेष संस्केतर समाज, कवि यश का अध्ययन कर संस्कृत भारती की सेवा की ओर से उदासीनता का परित्याग करेगा।

अस्तु, अन्त में, आचार्य मम्मट की कारिका भरतवाक्य के रूप में–

नियतिकृतनियमरहितां

ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।

नवरसरुचिरां निर्मिति

मादधती भारती कवेर्जयति ।।

(काव्यप्रकाश– 1/1)

सन्दर्भ

1. *अथर्ववेद 10.8.32*
2. *ऋग्वेद 10.71.4*
3. *भाति मे भारतम्– 100*
4. *काव्यप्रकाश– 1/1*
5. *भाति मे भारतम् – पृष्ठ सं. 101*
6. *काव्यप्रकाश – पृष्ठ सं. 145*
7. *अग्निशिखा – पृष्ठ सं. 32*
8. *मत्तवारणी– पृष्ठ सं. 84*
9. *शाश्वती – पृष्ठ सं. 27*
10. *दशरूपकम् – पृष्ठ सं. 4/48*
11. *गीतकन्दलिका– पृष्ठ सं. 5*
12. *निर्झरिणी – पृष्ठ सं. 61*
13. *तदेव गगनं सैव धरा – पृष्ठ सं. 53*
14. *गीतकन्दलिका– पृष्ठ सं. 31*

REFERENCES

1. Atharvaveda 10.8.32
2. Rigveda 10.71.4
3. Bhati me Bharatam-100
4. Kavyaprakash -1/1
5. Bhati me Bharatam, pg 101
6. Kavyaprakash, pg 145
7. Agnishikha, pg 32
8. Mattvarni, pg 84
9. Shashwati, pg 27
10. Dashroopkam, pg 4/48
11. Geetkandlika, pg 5
12. Nirjharni, pg 61
13. Tadaiva Gaganam Saiv Dhara, pg 53
14. Geetkandlika, pg 31